Niyam- Ek Parichay

Course - BA/BSc in Yogic Studies
Paper - I

Lesson presented by-

Dr. Prabhakar Devraj

Co-ordinator, Yogic Studies

E-mail - drpdevraj@gmail.com*

* छात्र चाहें तो विषय से सम्बंधित प्रश्न इ-मेल द्वारा पूछ सकते हैं।

नियम

सामान्य प्रयोग में नियम शब्द का अर्थ होता है किसी कार्य को पूर्व निर्धारित विशेष विधि से करना । हम कहते हैं की हर कार्य नियम से करना चाहिए । योग में नियम का विशेष अर्थ है। 'नियम' महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित 'अष्टांग योग' के आठ अंगों में द्वितीय अंग है । आठ अंग हैं - यम, नियम , आसन, प्राणायाम , प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ।

नियम पाँच हैं -

शौच संतोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानि नियमाः। (2-32)

(1) शौच

(2) संतोष

(3) तप

(4) स्वाध्याय

(5) ईश्वर प्रणिधान

(1) शौच

शौच का अर्थ है बाह्य तथा आंतरिक तथा मन की शुद्धता ।

बाह्य शुद्धता का अर्थ है अपने वातावरण, आवास, वस्त्र, शरीर आदि के मल को दूर करना तथा शरीर के निर्वाह के लिए आवश्यक शुद्ध एवं सात्विक भोजन करना । वातावरण और शरीर को साफ रखना हमें बीमारियों से बचाता है तथा शरीर को दृढ़ बनाता है। यदि शरीर रुग्ण हो तो हमारे सारे कार्य बाधित हो जाते हैं ।

आंतरिक शुद्धता का अर्थ है मन या अंत:करण की शुद्धि । लोभ, क्रोध, घृणा, अहंकार, राग, द्वेष आदि मन की अशुद्धियाँ हैं ।इनके कारण मन एकाग्र नहीं होने पाता । प्रेम, करुणा, मैत्री उदारता आदि भाव मन को शुद्ध करते हैं ।आन्तरिक शुद्धि से प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों पर नियंत्रण की योग्यता प्राप्त होती है।

(2) संतोष

हम कर्म करें और उसका जो भी फल प्राप्त हो उससे संतुष्ट रहें, यही संतोष है।

जीवन में ऐसी स्थितियाँ आती हैं, जब हमें लगता है कि मिहनत तो बहुत किया परन्तु सफलता उतनी नहीं मिली । इस दिशा में हम दूसरों से तुलना भी कर बैठते हैं। दूसरे ने कम मिहनत की या अच्छे कर्म नहीं किये फिर भी उसे अच्छा फल मिला । इस प्रकार की भावना असंतोष है ।

हमारे सुख या दुःख ऐसे कर्मों के फल हैं , जो हमने पूर्व जन्म में किए हैं ।वैज्ञानिक रूप से देखें तो हमारे जीवन पर अनेक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष शक्तियों का प्रभाव पड़ता रहता है। उन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता । ऐसी स्थिति में किस कर्म का क्या फल होगा, इसकी गणना करना असंभव है । ऐसी स्थिति में फल से संतोष न करना तनाव और कुंठा को जन्म देता है। अतः हम कर्म तो करें परन्तु उसका जो भी फल मिले, उससे संतुष्ट रहें तो मस्तिष्क पर पड़ने वाले व्यर्थ के तनाव से बचे रहेंगे ।

(3) तप

जीवन में लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कष्टपूर्वक श्रम करना ही तप है ।

किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हर व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक श्रम करना पड़ता है । योग साधक को भी योग के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं । इसके लिये तपस्या करनी पड़ती है, जो शारीरिक और मानसिक रूप से कष्टकारक होती है। यदि कोई इच्छा करे कि बिना कष्ट सहे उसे कार्य में सफलता मिले, ऐसा नहीं हो सकता।

योग ही नहीं, तप जीवन के हर क्षेत्र के लिए महत्वपूर्ण है । विद्यार्थी के लिए अध्ययन करना तप है । गृहस्थ के लिए परिवार का उचित पालन पोषण तप है ।

श्रीमद् भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय (सूत्र 14 से 19) में तप के शास्त्रीय स्वरूप एवं विभिन्न प्रकारों का वर्णन है ।

(4) स्वाध्याय

स्वाध्याय के दो अर्थ हैं -

(१) स्वस्यात्मनोऽध्ययनम् - स्व का अध्ययन ।

प्रथम हम स्वयं के प्रति जागरूक बनें । अपने मन की वृत्तियों का अध्ययन करें । जब तक हम स्वयं को नहीं जान लेते तब तक हमारा मन पूरी तरह इन्द्रियों के वश में होता है । मन अपनी वृत्तियों के अनुसार ही चलता है । वह हमें वासनाओं की ओर खींचता है । जब तक हम उन वृत्तियों को पहचान नहीं लेते, उनको दूर करने का प्रश्न ही नहीं उठता । अत: पहले उनकी पहचान करनी चाहिए। स्वाध्याय के अन्तर्गत ऐसे अभ्यास हैं, जो हमें इस प्रयास में सहायता पहुँचाते हैं ।

सजग होना स्वाध्याय की पहली सीढ़ी है। कब क्रोध में पड़ते हैं, कब लोभ हम पर हावी होता है, कब हम ईष्या-द्वेष के वशीभूत होते हैं आदि अवसरों के प्रति सजग हों । धीरे-धीरे हमारी समझ में आता है कि हम किन मनोवृत्तियों के शिकार हैं। ऐसी हमें आत्म साक्षात्कार से रोकती हैं । स्वाध्याय की सतत साधना हमें नकारात्मक मनोवृत्तियों से मुक्त करती है

(२) स्वयम् अध्ययनम् - स्वयं, बिना दूसरे की सहायता से, शास्त्रों का अध्ययन एवं चिंतन मनन ।

स्वाध्याय के अंतर्गत वैसी पुस्तकों, शास्त्रों तथा महापुरुषों के विचारों का अध्ययन सम्मिलित है, जो हमें जीवन में स्वस्थ मार्गदर्शन देते हैं । अतः सत् साहित्य का अध्ययन हमें नियमित रूप से करना चाहिए । अध्ययन से जो भाव मन में उठें, उनका विवेक द्वारा प्रक्षालन कर उनके अनुकूल अपने विचार तथा व्यवहार का परिमार्जन करना स्वाध्याय का महत्वपूर्ण पहलू है ।

(5) ईश्वर प्रणिधान :

ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है भगवान के प्रति समर्पण ।

योग में ईश्वर शब्द का उपयोग ब्रह्मांड के उस तत्व के लिए है जो नित्य, अव्यक्त, सूक्ष्म, अविनाशी, अजन्मा और असीम है। ईश्वर कोई देवी-देवता नहीं है, जिसको पूजा पाठ से खुश

करके हम अपनी मनोकामना पूरी करें । यह पूरी सृष्टि में व्याप्त है । यह हर जीव में निवास करता है । सभी जीवों में मात्र मनुष्य को यह क्षमता प्राप्त है कि वह ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है, इस उच्चतम चेतना के प्रति पूर्ण विश्वास के साथ समर्पण । जब इस उच्चतम चेतना के प्रति विश्वास दृढ़ हो जाता है तब संसार में होने वाले परिवर्तन या विक्षोभ मन को विचलित नहीं कर पाते । मन हर परिस्थिति में स्थिर रहता है और मनुष्य सुख दुःख का सामना बिना विचलित हुए करता है ।

सांसारिक जीवन में संकट के समय यह समर्पण जीने का आधार प्रदान करता है । जैसे कि जब दवाएँ काम करना बन्द कर देती हैं, तो हम ईश्वर की प्रार्थना इस विश्वास के साथ करने लगते हैं कि अब केवल ईश्वर ही रक्षा कर सकता है । दुर्गम परिस्थितियों में जब हम गहन अंधकार में घिर जाते हैं , तो वही हमारा एकमात्र सहारा दिखता है

सम्भावित प्रश्न :

1. महर्षि पतञ्जलि के अनुसार नियम की व्याख्या करें ।
2. नियम क्या हैं ? राजयोग में नियम के स्वरूप की विवेचना करें।
3. टिप्पणी लिखें -

   i) स्वाध्याय

   ii) शौच

   iii) संतोष

<u>संशोधन :-</u>

टाइप की कुछ अशुद्धियाँ दृष्टिगोचर हुई हैं, छात्र इन्हें संशोधित कर पढ़ें -

1. पाठ - योग की परिभाषाएँ - अशुद्ध - **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** (साधन पाद, सूत्र- 2)

   शुद्ध - **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** (समाधि पाद, सूत्र- 2)
2. पाठ -कर्मयोग - एक परिचय-

   अशुद्ध - प्रतिक्षण पूर्ण सजगता से किया गया कार्य है कर्म ही कर्मयोग है। -स्वामी निरंजनानंद

   शुद्ध - प्रतिक्षण पूर्ण सजगता से किया गया कार्य ही कर्मयोग है। -स्वामी निरंजनानंद